धर्मो रक्षति रक्षितः

करुणेश पाण्डेय

शोधच्छात्र
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय,
लखनऊ

मानव समाज में धर्म का स्थान सर्वोपरि है। विविध शास्त्रों में किसका क्या धर्म है इस पर व्यापक प्रकाश डाला गया है। जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए धर्म का निर्धारण किया गया है। अहिंसा युक्त कर्म जिससे किसी के द्वारा किसी को पीड़ा न पहुँचे सामाजिक व्यवस्था में कोई विसंगति न उत्पन्न हो उस प्रकार का आचरण धर्म कहा गया है। धर्म ही प्रजा को धारण करता है और धारण करने के कारण ही उसे धर्म कहा गया है। किसी की प्राण रक्षा से युक्त नैतिक आचरण ही धर्म है। धर्म के लिए यदि मिथ्या भाषण भी करना पड़े तो झूठ बोलने का पाप नहीं लगता।[1] धर्म का स्वरूप सूक्ष्म है और उसको समझना और भी कठिन। अज्ञानियों के लिए तो यह अत्यन्त दुरूह है।[2]

वेद, स्मृति, सदाचार और अपनी–अपनी आत्मा का प्रिय संतोष, ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण है। और धर्म का ज्ञान प्राप्त करने वालों को वेद ही श्रेष्ठ प्रमाण है।

'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्।।'[3]
'धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।'[4]

धर्माचरण से ही किसी व्यक्ति समाज और देश की उन्नति सम्भव है। धर्म की अवहेलना करने से कोई समाज बहुत दिनों तक स्थिर नहीं रह सकता। धर्म विहीन समाज में कभी सुख–शांति नहीं रह सकती। धर्म–विरुद्ध शासन से किसी भी देश की स्थिति सुदृढ़ नहीं हो सकती है। धर्म सदा अन्ततः सुख–संतोष दायक होता है जब कि अधर्माचरण मनुष्य को दुःख के गहरे गर्त में गिरा देता है। शरीर धारण करने वालों के सारे दुःख अधर्म–युक्त कार्य करने के कारण होते हैं जब कि धर्म व्यक्ति की सामाजिक आर्थिक और आत्मिक उन्नति का आधार बनता है।

'अधर्मप्रभवं चैव दुःखयोगं शरीरिणाम्।
धर्मार्थप्रभवं चैव सुखसंयोगमक्षयम्।।'[5]

न्यायपूर्वक दण्ड विधान का अनुपालन करने के कारण ही यमदेव को धर्मराज कहा जाता है। धर्म के प्रति अटूट आस्था और कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी धर्म का साथ न छोड़ने के कारण ही राजा युधिष्ठिर को धर्मराज की संज्ञा प्राप्त हुई। अपने स्वार्थ साधन के लिए स्वयं के लाभ से संयुक्त व्याख्या अधर्म का परिपोषण ही है जो कदापि ग्राह्य नहीं हो सकता। यद्यपि यह भी सत्य है कि धर्म सबके लिए एक जैसा नहीं हो सकता।

'श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।'[6]

अच्छी तरह से आचरण किया गया अपना गुण रहित धर्म भी दूसरे के बहुत श्रेष्ठ धर्म से अच्छा है। अपना धर्म निबाहते हुए यदि मृत्यु भी हो जाये तो वह भी कल्याणकारी है किन्तु दूसरे का धर्म पालन भय प्रदान करने वाला ही कहा जायगा।

यह लाख टके की बात है कि जिसके लिए जो धर्म नियत है उसका हर कीमत पर पालन करना उसका परम पुनीत कर्तव्य है। युद्ध के मैदान में जहाँ शत्रु सेना के समक्ष अपने प्राण हथेली पर रखकर उससे युद्ध करना एक सैनिक का धर्म है वही निहत्थे और अपने से असमान योद्धा से यदि वह युद्ध नहीं करना चाहता है अथवा रणक्षेत्र से पलायन कर रहा है तो उस पर प्रहार करना धर्म नहीं कहा जायेगा। घर पर पधारे हुए अतिथि का सत्कार करना गृहस्थ का प्रथम धर्म है किन्तु यदि वहीं किसी वञ्चक का आगमन है तो उससे अपने को बचाना और किसी प्रकार उसे हटाना ही धर्म है। जिस प्रकार किसान का कृषि कार्य करना धर्म है, व्यापारी का व्यापार करना उसका धर्म है, उसी प्रकार विद्यार्थी का विद्याग्रहण करना, संन्यासी का त्याग और लोककल्याण के लिए समर्पित रहना धर्म है।

जब तक लोक में सभी अपने धर्म का पालन करते है तब तक सामान्य जन से लेकर विशिष्ट जनों तक, रंक से लेकर राजा तक, गृहस्थ से लेकर संन्यासी तक किसी को किसी प्रकार की विसंगति का सामना नहीं करना पड़ता है किन्तु जब इसके विपरीत लोग अपना रास्ता भूलकर अधर्म की ओर जाने लगते हैं तो हर जगह विषम स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। धर्म के अभाव में अधर्म की वृद्धि हो जाती है फलतः आसुरी प्रवृत्ति और सशक्त होकर समाज में विकृति उत्पन्न कर देती है और दुर्जनों का अत्याचार एवं सज्जनों की पीड़ा बढ़ जाती है। जिसके लिए स्वयं परमात्मा को धरती पर आना पड़ता है।

'यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।'[7]

धर्म मनुष्य की सोच पर आधारित है। एक व्यक्ति परिश्रम करते हुए नेक नियति से अपनी जीविका चलाते हुए उत्तम धर्म का पालन करता है इसके लिए ईमान से कमाई हुई सूखी रोटी मोहन भोग का स्वाद प्रदान करती है वहीं एक चौर प्रवृत्ति का व्यक्ति चोरी करना अपना धर्म समझते हुए अनैतिक आचरण करता हुआ पर धन लुण्ठन में अपना श्रम लगाता है किन्तु क्या इसे धर्म कहा जायगा कदापि नहीं। अनैतिकता पूर्वक अर्जित धन से भले ही कोई मन्दिर, धर्मशाला, विद्यालय जैसी पवित्र वस्तुओं का निर्माण कराये यज्ञ–अनुष्ठान या भोजन, प्रसाद वितरण कराये किन्तु वह प्रशंसनीय नहीं कहा जायगा क्योंकि उसमें लगायी गयी सारी वस्तुएँ शोषण और बेईमानी के धन से युक्त है। न्यायपूर्वक कमाई गयी थोड़ी सी भी पूँजी अन्याय से अर्जित रत्नों के भण्डार से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।

अपने–अपने स्वाभाविक कर्मों को करना ही धर्म है। स्वकर्तव्य पालन के कारण ही सूर्य सारे लोकों को आलोकित करता है। चन्द्रमा अपनी स्वच्छ चाँदनी से अखिल विश्व को शीतलता प्रदान करता है, तारे चमकते हैं, सागर तप–तप कर भी मेघों के माध्यम से धरती के कण–कण को सींचता है। कल–कल निनादिनी नदियाँ, झर–झर झरते झरने, घने–घने वन बाग,

ऊँचे–ऊँचे पर्वत अपने नियत कार्य को करते हुए धर्म का ही तो पालन करते हैं फिर मनुष्यों के लिए तो धर्म का पालन प्राण वायु के समान मूल्यवान है।

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु।[8]
श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम्।।'[9]

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामचन्द्र ने प्रजापालन को अपना प्रमुख धर्म माना। प्रजापालन और प्रजानुरंजन के लिए उन्हें न चाहते हुए भी कठोरतम निर्णय लेते हुए परम पुनीता भार्या का परित्याग करना पड़ा। यह धर्म पालन का ऐसा अनूठा उदाहरण है जो अन्यत्र मिलना दुर्लभ है। श्रीराम का सम्पूर्ण जीवन ही धर्म के पालन के लिए समर्पित था।

'युक्तः प्रजानामनुरञ्जने स्यास्तस्माद्यशो यत्परमं धनं वः।'[10]

जिस सीता के लिए उन्हें सुग्रीव की सहायता से लंकाधिपति रावण की विशाल राक्षसी सेना से युद्ध करना पड़ा और रावण का वध किया। अग्नि परीक्षा पूर्वक जिसकी परम पवित्रता सर्वविदित थी उसी प्राणों से अधिक प्रिय अर्द्धांगिनी का क्षुद्र लोकापवाद के कारण बिना विलम्ब के वन भेजने में भी नहीं संकोच किया।

इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं के लिए धर्म का पालन उनका परम कर्तव्य था। लोकानुरंजन और प्रजापालन उनकी रग–रग में समाया था।

जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए धर्म का निर्धारण किया गया है। अहिंसा युक्त कर्म जिससे किसी के द्वारा किसी को पीड़ा न पहुँचे सामाजिक व्यवस्था में कोई विसंगति न उत्पन्न हो उस प्रकार का आचरण धर्म कहा गया है। धर्म ही प्रजा को धारण करता है और धारण करने के कारण ही उसे धर्म कहा गया है। किसी की प्राण रक्षा से युक्त नैतिक आचरण ही धर्म है। धर्म के लिए यदि मिथ्या भाषण भी करना पड़े तो झूठ बोलने का पाप नहीं लगता।

'इक्ष्वाकुवंशोऽभिमतः प्रजानाम्।'[11]
'स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतो नास्ति मे व्यथा।।'[12]

मित्र धर्म का निर्वाह करते हुए श्रीराम ने मर्यादा पुरुषोत्तम होते हुए भी छिपकर बालि का वध किया। शरणागत विभीषण को दिये गये वचन के अनुसार उसे विजित लंका का राज्य दे दिया।

ब्राह्मण के लिए जहाँ वेद पठन–पाठन यज्ञादिक आदि कार्यों को सम्पन्न कराना धर्म है वहीं राज्य का संचालन, प्रजा का पोषण और रक्षा करना राजा का क्षात्र धर्म है, और इसी प्रकार धर्मपूर्वक अपनी आजीविका–चलाना, लोगों की यथाशक्ति सहायता करना सामान्य जनों का धर्म है।

संसार में किसी भी व्यक्ति की स्थिति सदैव समान नही रहती है। बचपन–यौवन–वृद्धावस्था प्रातः–मध्याह्न और संध्या की भाँति आते हैं और चले जाते हैं। अन्ततः प्राणी महायात्रा की ओर प्रस्थान कर देता है। त्रैलोक्य की सारी सम्पदा देवराज इन्द्र सा

ऐश्वर्य ही क्यों न हो किन्तु एक न एक दिन वह सब धरा–का धरा ही रह जाता है। कहा गया है–

'कज्जाक अज़ल का लूटें है दिन–रात बजाकर नक्कारा।
सब ठाट पड़ा रह जायेगा जब लाद चलेगा बन्जारा।।'[13]

पुत्र परिवार पत्नी माता–पिता आदि के प्रति कितना ही प्रगाढ़ प्रेम भले ही क्यों न हो पर उन पर भी अपना कोई वश नहीं चलता और एक न एक दिन वियोग होना अवश्यभावी है। किन्तु धर्म के द्वारा अर्जित कीर्ति सुयश उसके न रहने पर भी कहे जाते हैं। इसीलिए बहुत सोच–विचार कर धर्माधर्म का सम्यक् ध्यान रखते हुए अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

'अरे मन समझके लाद लदनिया।
सौदा कर तो यहीं कर भाई आगे हाट न बनिया।'[14]

विश्वामित्र वशिष्ठ जैसे ऋषि, वाल्मीकि, व्यास तुलसीदास जैसे महाप्राज्ञ, रामकृष्ण, युधिष्ठिर, मान्धाता जैसे महामानव, ध्रुव, प्रह्लाद जैसे भक्त शिवि, दधीचि से दानी आज हमारे बीच कहाँ हैं? किन्तु अपने धर्माचरण के बल पर यशःकाय से अजर–अमर हैं।

'अस्थिरं जीवितं लोके अस्थिरं धन यौवनम्।
अस्थिरं पुत्र दाराद्यं धर्मः कीर्तियशः स्थिरम्।।'[15]

समय सदा गतिमान रहता है वह किसी की कभी प्रतीक्षा नहीं करता है। अस्थिर संसार की दशा को देखकर जो कर्तव्य बुद्धि से धर्म को स्थिर मानते हैं वे कभी अधर्म की ओर पग नहीं बढ़ाते।

'चलाचले तु संसारे धर्म एको हि निश्चलः।'[16]

धर्मपूर्वक न्याय युक्त धर्म का उपार्जन कर यथाशक्ति गृहस्थ धर्म का पालन करते हुए यज्ञादि शुभ कर्म और भगवान् की भक्ति करते हुए लोग सांसारिक सुखों का उपभोग करने का सौभाग्य प्राप्त करते हैं और धर्म विरुद्ध कार्य करने वाले अधोगति को प्राप्त होते हैं। धनार्जन के बिना जीवन का सुचारु रूप से संचालन असंभव है किन्तु यह भी आवश्यक है कि वह धर्मपूर्वक ही अर्जित किया जाय। धन से ही धर्म और धर्म से ही सुख प्राप्त होते हैं। 'धनात् धर्मः ततः सुखम्'।[17] धर्म ही एक ऐसा साधन है जिससे मनुष्य को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों सुख मिलते हैं। इसलिए मनुष्य का हर संभव प्रयत्न करते हुए धर्म का आचरण उसके हित में है।

'धर्मात् प्रजायतेऽर्थश्च धर्मात्कामोऽभि जायते।
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत्।।'[18]

धर्म, अर्थ और काम तीनों में जो धर्म को प्रधान मानकर तदनुसार कार्य करता है वह पुरुष महाप्रतापी होकर सूर्य की भाँति कांतिमान हो सभी प्राणियों का प्रिय बन जाता है किन्तु धर्म के विपरीत चलने वाला पाप बुद्धि का आश्रय ग्रहण कर सारी पृथ्वी के ऐश्वर्य से भी संतुष्ट नहीं रहता और दुःख भोगने के लिए बाध्य हो जाता है।

श्रद्धा से धर्म में मनुष्य की प्रवृत्ति होती है। धन के अक्षय भण्डार से भी धर्म की सिद्धि नहीं हो सकती। श्रद्धा से ही मुनिजन महात्यागी हो धन में अनिर्लिप्त होने पर भी मोक्ष पाते हैं।

'श्रद्धया धार्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः।
निष्किञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवप्रताः।।'[19]

'धर्मं कृत्वा कर्मणां तात मुख्यं महाप्रतापः सवितेव भाति।
हीनो हि धर्मेण महीमपीनां लब्ध्वा नरः सीदति पापबुद्धिः।।'[20]

धर्मपूर्वक किया गया कार्य ही विजयपथ की ओर अग्रसर करता है अतः जय कामी मनुष्य को धर्म पथ से च्युत नहीं होना चाहिए। धर्म की रक्षा हेतु ही गुरु द्रोणाचार्य ने धृतराष्ट्र को समझाते हुए कहा राजन! मेरे लिए मेरा पुत्र अश्वत्थामा और शिष्य अर्जुन एक समान हैं इसी प्रकार आपके पुत्र और अनुज पुत्र दोनों आपके लिए एक जैसे ही हैं अतः न्याय और धर्म का अनुसरण करते हुए पाण्डवों का आधा राज्य उन्हें देने की कृपा करें क्योंकि यह ध्रुव सत्य है जहाँ धर्म है वहीं विजय है।

'अश्वत्थामा यथा मह्यं तथा श्वेतहयो मम।
बहुना किं प्रलापेन यतो धर्मस्ततो जयः।।'[21]

धर्म के आठ मार्ग बताये गये हैं जो व्यक्ति इन गुणों को धारण करता है वही सच्चे अर्थों में धर्म का अनुसरण करता है। वह धर्म, धर्म नहीं कहा जा सकता यदि कही हुई बात में छल–कपट छिपा हो। यदि छलपूर्वक सत्य भी कहा जाय तो वह असत्य ही है जब तक तन में सामर्थ्य है धर्माचरण से प्रीति रखना मनुष्य का परम कर्तव्य है। अहिंसा, क्रोध मुक्त, त्याग, शांति, निन्दादि से दूर रहना, प्राणिमात्र पर दया, अनासक्ति, कोमलता, लज्जा आदि सभी गुण धर्मवान् पुरुष के लक्षण हैं। जो इनका ध्यान रखकर जीवन–यापन करता है वह ही धर्म का सच्चा अनुयायी है।

'तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभि जातस्य भारत।।'[22]

सृष्टि के सभी जीवों के प्रति दया भाव रखना प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य है। मनसा, वाचा, कर्मणा किसी भी जीव को पीड़ा न पहुँचाना ही परम श्रेष्ठ धर्म है।

'नैतादृशः परो धर्मो नृणां सर्द्धममिच्छताम्।
न्यासो दण्डस्य भूतेषु मनोवाक्कायजस्य यः।।'[23]

परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी प्राणी पूर्णतया निष्पाप नहीं रह पाता है किन्तु धर्म का पालन करता हुआ तपस्वी व्यक्ति अपने पापों को शमित कर ब्रह्म से साक्षात्कार करने का पात्र बन जाता है।

'धर्मप्रधानं पुरुषं तपसा हत किल्विषम्।
परलोकं नयत्याशु भास्वत्तं खशरीरिणम्।।'[24]

शरीर अनित्य है धन स्थिर नहीं अतएव जब तक सामर्थ्य है शक्ति है धर्म का संचय करते रहना चाहिए क्योंकि क्षीणावस्था में धन और धर्म दोनों को नहीं पाया जा सकता।

'अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः।।'

छल युक्त सत्य असत्य ही है और असत्य होने के कारण धर्म विरुद्ध है।

'इज्याध्ययन दानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्ट विधः स्मृतः।।[25]
'नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्।''[26]

इन्द्रियाँ मनुष्य को विषयों की ओर बहुत शक्ति से खींचती हैं अतः बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह आत्मनियंत्रित होने का निरन्तर अभ्यास करता रहे। दूसरों की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझकर यथाशक्ति उसे दूर करने का प्रयत्न करे। जो कुछ भी परिश्रम पूर्वक प्राप्त हो उसमें संतोष धारण करने वाला अपने धर्म से कभी विचलित नहीं हो सकता किन्तु जो व्यक्ति इन्द्रियों के विषयानुकूल उन्हें तृप्त करने का प्रयास करता रहता है वह धर्म से विमुख हो अधर्म और अन्याय की ओर जा सकता है। जीव मात्र पर दया का भाव मनुष्य के लिए अवश्य पोषणीय धर्म है।

'दयया सर्वभूतेषु संतुष्ट्या येन केन वा।
सर्वेन्द्रियोपशान्त्या च तुष्यत्स्याशु जनार्दनः।।'[27]

सदाचार स्वाध्याय–तपस्या–अहिंसा आदि उदात्त मानवीय गुण धर्म के पालन के आधार हैं जो कर्तव्य बुद्धि से इन मूल्यों का पालन करते हैं न्याय युक्त धन से अपने कार्य पूर्ण करते हैं वे ही सच्चे धर्मानुयायी हैं।

'ये धर्ममेव प्रथमं चरन्ति, धर्मेणलब्ध्वा च धनानि काले।
दारानवाप्य क्रतुभिर्यजन्ते तेषामयं चैव परश्च लोकाः।।'[28]

धर्म पालन में जिन महापुरुषों ने प्राणों की भी चिन्ता नहीं कि वे ही सच्चे धर्म पथ के पथिक हैं। वे सदैव 'प्राणा यान्तु न च धर्मः'[29] के सिद्धान्त पर चलकर औरों को भी धर्म पर चलने की प्रेरणा प्रदान करते हैं। महापुरुष किसी भी विषम परिस्थिति में चाहे उनकी जितनी भी क्षति क्यों न हो जाये अपने धर्म को नहीं छोड़ते हैं।

'महान्तो हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते न च धर्मं त्यजन्ति।'[30]

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. संक्षिप्त महाभारत, पृ0 916
2. मनुस्मृति, अ0 2/12, पृ0 52
3. मनुस्मृति, अ0 2/13
4. मनुस्मृति, अ0 6/64, पृ0 202
5. भगवद्गीता, अ0 3/35
6. भगवद्गीता, 4/7
7. भगवत्गीता, अ0 18/45
8. वही, अ0 18/47
9. उत्तररामचरितम्, 01/11
10. उत्तररामचरितम्, 01/44
11. उत्तररामचरितम्, 01/12
12. बन्जारानामा
13. कबीरदास
14. सं0ग0पु0, आचारकाण्ड, 115/26, पृ0 202

15. चाणक्यनीति, अ0 5/20, पृ0 39
16. संस्कृत सूक्ति
17. ग0प0, अ0 8/109, पृ0 103, भाषा टीका
18. गरुणपुराणम्, अ0 8/110, पृ0 103, भाषा टीका,
19. महाभारत, उद्योगपर्व, अ0 27/06, पृ0 2104
20. वही, अ0 148/16, पृ0 2434
21. भगवद्गीता, अ0 16/03
22. भाग0म0पु0, अ0 15/08, स्कन्ध–07, पृ0 328
23. मनुस्मृति, अ0 4/243, पृ0 164, 01 क0चा0नी0 12/12, पृ0 94
24. महाभारत, उद्योगपर्व, 35/56, पृ0 2146
25. महाभारत, उद्योगपर्व, 35/58
26. भागवत, म0पु0, अ0 31/19 स्क0 04
27. महाभारत, वनपर्व, अ0 83/91
28. शिवराज विजये द्वितीयो निश्वासे, पृ0 69, पं0 अम्बिकादत्त व्यास
29. वही, पृ0 70